कहानी

- डॉ. ज्योति एन. मंत्री

यूं ही बरसते रहें

भाग खुल गये रत्नजा के तो? आज विवाह के पंद्रह वर्षों बाद ही क्यों न हो किंतु रत्नजा के पति शैलेन्द्र को सरकारी नौकरी तो लग गई थी। क्या सरकारी नौकरी कोई सड़कों पर पड़ी हुई मिलती है? सास के इन शब्दों से परे इस समय रत्नजा केवल अपने मन मे उठनेवाले ज्वार–भाटे के उठती–गिरती लहरों को गिनने का कार्य रहीं थी। हां, सत्य ही तो है पंद्रह वर्षों का मोल आज एक ही तो पल में होना था। रत्नजा अपने जीवन के पंद्रह वर्षों की तपस्या का मोल–तोल कर नहीं पा रहीं थी और कर रही थी तो केवल जीवन के सूनहरे बितने वाले उन दिनों का जिसके उसने कभी स्वप्न देखे थे। ऐसे समय नाप–तौल की रणभूमि में उसके स्वप्निल दिन ही उसे भारी लगने लगते। उसे लगता कि मैं सबसे चिख–चिखकर कहूँ कि मुझे केवल मेरे जीवन के अधिकार के वह दिन, दिन क्या पूरे पंद्रह साल लौटा दो जो मैंने घुट–घुटकर बिताये हैं। रत्नजा ने अपने नये जीवन में कदम रखने से पूर्व कई सपने संजोए थे जो कि हर लड़की संजोती है। अपनी जिम्मेदारियाँ और कर्तव्य को लेकर कई संस्कार उसे घोलकर पिलाये गये थे। उसके पति के प्रति और पति का उसके प्रति किए जानेवाले कर्तव्यों का भी उसे खूब ज्ञान था। किंतु पति महोदय उसकी कोमल भावनाओं से अनभिज्ञ अपनी ही मस्ती और बडबोलेपन में रहते थे।

इसका मतलब यह नहीं कि रत्नजा अपने पति की नौकरी लगने से खुश नहीं थी, उसकी खुशी तो केवल यदि कहीं हैं तो ईश्वर और रत्नजा ही जानते थे, क्योंकि वहीं तो थी जो ईश्वर की रोज मन ही मन घंटो प्रार्थना, मनवार करती रहती। आज उसकी यह प्रार्थना तो सफल हो गयी थी किंतु उसकी तपस्या को क्या, उसके अपने भी जान सकें थे? रत्नजा ने ऐसा जीवन–साथी चाहा था जो कि उसके मन की थाह को स्वयं जाने और रत्नजा, साथी और उसके परिवार के सुख–दुख में डूबकर उसका सहारा बनें। वह अपना जीवन बड़बोलेपन के साथ नहीं अपितु सादगी के साथ जीना चाहती थी। किंतु परिस्थितियों का क्रुर अट्टहास देखिए रत्नजा तो कुछ हद तक अपने कार्य में सफल भी रहीं लेकिन साथी के संबंध में उसे कालकूट प्राशन कर नीलकंठ ही बनना पड़ा। उसने अपनी उम्र के उस सुनहरे जीवन के हिस्से का शायद विवाह की भाँवरों के साथ अनजाने ही होम कर दिया था, जो उसे पुनः मिलने वाले नहीं थे। पंद्रह वर्ष वैसे देखों तो कोई बहुत बड़ी बात नहीं थी किंतु रत्नजा के लिए तो जैसे कई युग एक साथ बीत गये थे। हां, बचपन का वह पड़ाव जिसमें कुछ

हिस्सा हम जीवन का भूल भी जाते है, तब की बात कुछ और होती है किंतु यह तो जीवन का वह हिस्सा था जो केवल याद ही याद रखा जा सकता था। चाहकर भी वह अपने जीवन के इस समय को पीछे नहीं ले जा सकती थी। उसका मन तो बहुत करता कि जीवन का गया हुआ समय फिर से लौटा ले। लेकिन कैसे? यह कला उसे ज्ञात न थीं। वैसे भी समय कोई गेंद तो नहीं जिसे हम आगे और पिछे कर सकें। जीवन का बहुत बड़ा हिस्सा समय बनकर रेत की तरह उसके हाथ से फिसल गया था और लाख चाहत के बात भी रत्नजा उसे हाथ में थाम न सकी थी।

रत्नजा की जेठानी जो सदा उसके पति को बुरा कहती आज वहीं आगे बढ़कर कह रही थी, देवरजी में बहुत सबुरी (पेशन्स) है। रत्नजा तो इन शब्दों का मतलब जैसे आज समझ ही नहीं पा रही थी कि धैर्य, सबुरी के मायने क्या होते है? किसमें धैर्य, सबुरी है, उसमें जिसने कभी अपनी जिम्मेदारी ओढ़ी ही नहीं अथवा ओढ़ने से पहले ही कदम–कदम पर भाग खड़ा हुआ, या उस रत्नजा में जो जीवन के आँसुओं को पंद्रह वर्षों से पी रही थी अथवा यों कहिए कि ऐसे पति का साथ पाकर उसने अपने जीवन कों ही दाँव पर लगा दिया। सारा परिवार, और शैलेन्द्र के स्वभाव से परिचित अन्य लोग शैलेन्द्र को उसकी गलतियों की वजह से समय–समय पर कोसने में पीछे नहीं रहते वे ही लोग आज उसके धैर्य और सबुरी की भूरि–भूरि प्रशंसा कर रहें थे। ‘चलती के साथ रहने’ के इस नियम को रत्नजा वर्षों पूर्व ही समझ चुकी थी। फिर भी न जाने क्यों आज उसे इन दोगले परिजनों से बड़ी कोफ़्त हो रहीं थी।

अपने बड़े–बूढों से अक्सर हम सूनते है ‘‘समय रहते जो जागा या जिसने अपने कर्म को समझा वहीं मनुष्य’’ अथवा

‘‘काल करें सो आज कर, आज करें सो अब,
अवसर बीतों जात है, बहुरी करेंगों कब?’’

मतलब हमारे जीवन में आनेवाले मौकों को हमें स्वर्णावसर की तरह ग्रहण कर कर्म करना चाहिए। बीता हुआ कल और पल कभी नहीं आता। किंतु शैलेन्द्र को इन पलों से कोई सरोकार न था। जिस मनुष्य ने पत्नी, बच्चे के जीवन का अहम् हिस्सा अपनी नादानी में खो दिया वह वास्तव में आज प्रशंसनीय था भी अथवा नहीं यह रत्नजा तो न जान सकी, शायद आज उसकी प्रशंसा करनेवाले लोग इसे भलीभाँति समझे हों।

रत्नजा के पति अपनी अत्यंत ऊँची सोच की वजह से अपनी जिम्मेदारियों के निर्वाह हेतु जब कोई छोटा कार्य अथवा नौकरी न कर पाये तब ऐसे विकट समय रत्नजा ने पूर्ण धैर्य एवं निष्ठा के साथ अपना व्यवसाय

चलाते हुए परिवार के हर दायित्व का वहन किया था। ऐसा करते समय कई बार जीवन की दो राहों पर वह मात्र अकेली खड़ी थी। इस समय श्वसुराल पक्ष ने आरंभ में थोडी गंभीरता बताई अवश्य थी किंतु पश्चात् कभी उसका साथ न दिया था। तब क्या रत्नजा का मनमयुर अब इतनी खुशी अर्थात् पति की नौकरी और समस्त परिजनों का साथ पाकर नाचने लगेंगा? अथवा नहीं? हां, यहीं बात यदि पंद्रह वर्षों पूर्व होती तो रत्नजा का मनमयुर अवश्य नाचता किंतु अब वह समय समाप्त हो गया था। फिर भी उसने सदा अपने दिल को यहीं कहकर समझाया था कि 'आँखे जो देखना चाहती है, सदा वहीं नहीं दिखता' किंतु ऐसा भुलावा अपने मन को कुछ ही दिन दिया जा सकता है। अब तो रत्नजा के मन ने आत्महत्या ही कर ली थी। अरे आप कहीं कुछ अनाप–शनाप सोचने की गलती न कर बैठियेगा। रत्नजा ने मृत्यु का वरण नहीं किया था, बस उसके मन ने आत्महत्या कर ली थी। कहते हैं न 'एक दिन मरनेवाले को कोई भी रोयेगा, किंतु रोज मरनेवाले को कौन रोयें'? और फिर मन की आत्महत्या भी कोई आत्महत्या है। जहाँ विवाह के समय पवित्र अग्नि के समक्ष मनुष्य दो आत्माओं के एक हो जानें की कसमें खाता है, वहीं ऐसी हजारों आत्महत्याएँ तो यहाँ भाँवरों की बलिवेदी के साथ प्रतिदिन ही होती रहती है। फिर किसे–किसे रोएँ।

वैसे मैं आपको एक बात बताना तो भुल ही गयी। रत्नजा की पढ़ी–लिखी युवती थी और उनके पति महोदय और रिश्तेदारों विशेष रूप से पति के बहन–बहनोई ने झूठ की डिग्री और कामधंदा बताकर यह विवाह कराया था। किंतु पति महोदय यदि बातों के मायाजाल के अतिरिक्त परिश्रमी होते तो रत्नजा का ध्यान उनकी शिक्षा की ओर कभी न जाता अथवा मुझे यह कहानी लिखने का अवसर ही न मिलता। अस्तु, एक अन्य रिश्तेदार ने ताना मारा – 'कहते है ना ईश्वर के घर देर है, अंधेर नहीं' मैं न कहती कि शैलेन्द्र को नौकरी जरूर मिल जावेगी। सबूरी का फल मिठा होवे है। पर आजकल.....। जैसे नौकरी, नौकरी नही कोई पा ॅपीन्स हो जो इन्होंने जेब से निकाल कर शैलेन्द्र के हाथ पर रख दी। कहावतें कहने वालों को शायद यह पता न हो कि ज्यादा सबूरी फल सड़ा भी सकती है। वैसे भी हमारी एक आदत होती है, जब तक हमारी अपनी बारी न हों तब हम दूसरों को कहावतों एवं मुहावरों के डोज तो पीला ही सकते है। चाहे हमने समय के साथ अच्छे परिवर्तन ग्रहण न किये हों किंतु नेताओं की तरह समय को भाँपकर किसका साथ देना है अथवा हां में हा मिलाना है इतना तो हम जान ही लेते है। हम यह भी भली–भाँति जानते है कि हमारा समुदाय 'प्रशंसा का कायल' है, फिर आप ही कहिए ऐसे संजीदा मौके पर परिवार और रिश्तेदार शैलेन्द्र की प्रशंसा में कैसे पिछे रहते। और वैसे भी पंद्रह वर्षों तक तपस्या कर वेदना सहनेवाली और दर्द पीने वाली रत्नजा की प्रशंसा का यह समय भी नहीं था।

पर रत्नजा ईश्वर से सदा यहीं कहती कि हे ईश्वर अब 'देर तो बहुत हो चुकी, अंधेर मत करना'। रत्नजा अपनी जिम्मेदारियों को खूब निबाह रही थी किंतु अब शैलेन्द्र की बारी थी। रत्नजा के अश्रुपूरित नेत्र खुशी के साथ इसी भय से चिंतित थे कि – ईश्वर ने तो अपनी ओर से अंधेर न की थी किंतु कहीं शैलेन्द्र अपनी ऊँची सोच और बड़बोलेपन की वजह से अंधेर न कर दे। अर्थात् इतने वर्षों बाद नौकरी मिलने के बाद भी शैलेन्द्र उसका मोल न समझ नौकरी में कोई गड़बड़ी कर कहीं नौकरी छोड़ ना दे अथवा उनकी आदतों की वहज से उन्हें नौकरी से हाथ न धोना पड़ें। बस उसकी यहीं शुभाकांक्षा थी कि जो लोग आज शैलेन्द्र की झोली में प्रशंसा के फूल बरसा रहें है, वे फूल 'यूं ही बरसते रहें'।

सहयोगी प्राध्यापक, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,
श्रीमती केशरबाई लाहोटी महाविद्यालय, अमरावती
भ्रमणध्वनी क्र. 9421788687,
Email: jyotibhutada40@gmail.com